मार्कण्डेय के कथा साहित्य में ग्रामीण चेतना : सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में

Dr. Jay Prakesh Yadav[1] and Sunil Kumar Yadav[2]
Research Supervisor and Associate Professor[1]
Research Scholar, Department of Hindi[2]
Multani Mal Modi (PG) College, Modinagar, Ghaziabad, Uttar Pradesh, India[1]
Chaudhary Charan Singh University, Meerut, Uttar Pradesh, India[2]

शोध सारांश :

प्रस्तुत शोध के माध्यम से यह स्पस्ट होता है कि किसी भी मनुष्य में चेतना दो प्रकार की होती है– व्यक्तिगत चेतना एवं सामाजिक चेतना। व्यक्तिगत चेतना में प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं का बोध होता है, उसका अपना खुद का अस्तित्व होता है, एवं वह स्व उन्नति में प्रयुक्त होता है। लेकिन जब कोई अपने 'स्व' से उठकर समग्र समाज के बारे में सोचता है तो वह सामाजिक चेतना होती है। सामाजिक चेतना के बारे में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है–''**शताब्दियों का अनुभव यह बताता है कि उत्तम साहित्य की सृष्टि करना बड़ी बात नहीं है। सम्पूर्ण समाज को सचेतन बना देना भी परम आवश्यक है जो उत्तम साहित्य को अपने जीवन में उतार सके।** तात्पर्य यह है कि साहित्यकार का दायित्व केवल अच्छे साहित्य की रचना नहीं है बल्कि समाज को जागृत करना भी होता है।

मुख्य शब्द :– मार्कण्डेय, कथा साहित्य, ग्रामीण, चेतना, सामाजिक, सांस्कृतिक, परिप्रेक्ष्य साहित्य आदि।

प्रस्तावना :

प्रस्तुत शोध में किसी भी मनुष्य की चेतना निर्मित होने में सामाजिकता के साथ–साथ आर्थिक तंत्र की भी भूमिका होती है। मनुष्य समाज की रीढ़ ही अर्थतंत्र है। मनुष्य की समरूत दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति में आर्थिक सुदृढ़ता बहुत जरूरी होती है। इस बारे में कौटिल्य का कहना है कि ''**धर्म, अर्थ, काम इन तीनों में अर्थ प्रधान है, धर्म, और काम, अर्थ पर निर्भर है।** साहित्य में समाज का स्पंदन बहता है और जैसे किसी भी व्यक्ति के जीवन की धमनियों में लहू बहना आवश्यक होता है ठीक उसी तरह अर्थ किसी भी समाज की धमनियों में प्रवाहित होने वाले रक्त के समान है। इसीलिये किसी भी साहित्यकार की सामाजिक चेतना के निर्मित होने में आर्थिक पक्ष की मजबूती होना अत्यंत आवश्यक होता है। साहित्य में समाज की अखण्ड जीवनधारा का रूपांतर होना आवश्यक है। अतः साहित्यकार की सामाजिक चेतना उस समाज के ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों पर आधारित रहती है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, इसका आधार ही खेती और कृषक ही है और इसके आधार पर ग्रामीण संस्कृति के रूप में व्याख्या करना उचित नहीं होगा। लेकिन स्वतंत्रता के बाद हिंदी कहानी साहित्य में ग्रामीण संस्कृति का जो स्वरूप उभरकर सामने गाता है वह बहुत संवेदात्मक होता है

आधुनिक काल में 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है। **"संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्ग के डुकृञ् (करणे) धातु से 'सुट्' का आगम करके 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है साफ सा परिष्कृत करना।**

इस बारे में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का मानना है कि, **"संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नहीं रहती, उसका मूर्तिमान रूप होता है। जीवन के नानाविध रूपों का समुदाय ही संस्कृति है।**

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर कहते हैं कि **"संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसलिये जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज में मिलकर हम जी रहे हैं, उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है, यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं, वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिये छोड़ जाते हैं इसलिये संस्कृति वह चीज मानी जाती है, जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए हैं तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है। यही नहीं, बल्कि संस्कृति हमारा पीछा जन्म–जन्मांतर तक करती है।**

भारत का अतीत उसका गौरव है, और समृद्ध भारतीय संस्कृति उसकी आत्मा है। भारत आर्थिक नजरिये से जरूर अभावग्रस्त था पर उसकी सांस्कृतिकता बहुत संपन्न थी। ग्रामीण परिवेश में पारंपरिक मूल्य, शादी–ब्याह, रीति–रिवाज, त्योहार, मेला, खेल–तमाशे, रामलीला, लोककथायें, लोकगीत आदि की वैभवशाली गाथा रही है। लेकिन इतना सब होने के बावजूद भारत में अशिक्षा, दकियानूसी रीति–रिवाज, रूढ़िवादी परंपराएं, कुरीतियाँ, भी व्याप्त थीं। मार्कण्डेय की कहानियाँ ग्रामीण संस्कृति की अपनी खासियत होती है, और यह अपने वैभव, भयावहता, परिवर्तन की ऊहापोह के साथ सजीव रूप में प्रकट हुई है।

एक दूसरे के सुख–दुख में सम्मिलित होना ग्रामीण संस्कृति की पहचान है, किसी एक की बेटी सब की बेटी मानी जाती थी, यदि गाँव में किसी लड़की की शादी में आवभगत में कमी रह जाती तो सारे गाँव की बदनामी होती थी। इसीलिये किसी की बेटी की शादी में सब जी–जान से जुट जाते हैं। **'मुंशीजी'** कहानी में वह अपने भोग–विलास में अपनी समस्त पूँजी गवाँ देते है लेकिन विधवा की लड़की के विवाह में अपनी पत्नी के जेवर भी बेच देते हैं। **"पंडिताइन रोने लगी, मुंशीजी ने पान की पीक उगलते हुए कहा, 'इसमें क्या धरा है चाची!' शादी तय करो सब देखा जाएगा। मुंशीजी ने अपनी बीबी का सारा जेवर बेच डाला और पंडिताइन के घर बैठकर शादी ब्याह का सारा इंतजाम किया। बारात आयी तो बड़ी इज्जत के साथ मिले कन्यादान किया।**

सारे गाँव में वाह–वाह मच गयी, पर कोई नहीं जानता था कि मुंशीजी की हालत एकदम खराब हो गई है। यहाँ मुंशीजी ने उस संस्कृति का जिक्र किया है जिसमें गाँव की बेटी सब की साँझी होती है।

मार्कण्डेय की कहानियों में संस्कृति का सामाजिकता के साथ गहरा संबंध रखती है। **'सोहगइला'** में इसी का वर्णन किया है, मार्कण्डेय की कहानी का अनुवाद रूसी एवं जर्मन भाषा में **'बॉक्स ऑफ सिन्दूर'** के नाम से हो चुका है। यहाँ लउँड़ी दाई की छोटी सी बच्ची का बाल–विवाह होता है। विदा के समय में उसकी माँ उसके हाथों में **'सोहगइला'** सुहाग का चिन्ह देते हुए कहती है कि **"इन्हें छोड़ना नहीं। कुल–परिवार की लाज का धियान रखना!'....'सास–ससुर का कहना मानना! जहाँ बैठाएँ, वहीं बैठना, जहाँ उठाएँ वहीं.....' और वह फूट–फूटकर रोने लगी थी, 'चीज–बरन का धियान रखना रनियाँ, कहीं गिरा न देना।** यही होते हैं भारतीय संस्कृति के संस्कार जो हर माँ अपनी बेटी को देती है। प्रारंभ में ही रामजस अपने फूटे का नगाड़े के साथ रहती है जो कि फूटा हुआ होता है, और यही उनके रोजगार का साधन होते थे। चमार चाति की औरतें उसे बजाया करती थीं । यहाँ पर ध्यान देने यौग्य बात यह है कि वह अपने तरफ से किसी सुअवसर पर यह मंगल–घोष कर रही हैं और वह भी उस नगाड़े के साथ जो कि फूटा हुआ है। यहाँ पर हमें यह देखने को मिलता है कि मार्कण्डेय ने एक–एक घटना, एवं हर वस्तु का चित्रण बहुत ही बारीकी से किया है। यही उनकी चेतना एवं सामाजिक संवेदना का जीता–जागता प्रमाण है।

मार्कण्डेय की कहानियाँ किसी विशेष लोक–संस्कृति का वर्णन तो नहीं करतीं पर पूर्वांचल की भाषा, मुहावरे, रीति–रिवाज, पहनावा, खेल–कूद, लोक–गीतों का सुंदर प्रयोग किया है। लोक–गीत के संदर्भ में विवेकी राय कहते हैं, **"लोक–गीतों में गाँव के प्राणों का स्पंदन होता है तथा उसका समूचा अन्तर वैभव इन गीतों के रूप में प्रस्फुटित होता है।**

मार्कण्डेय ने अपनी कहानी 'हरामी के बच्चे' में बहुत सुंदर लोक–गीत का प्रयोग किया है। जहाँ उफनती हुई गोमती नदी की धारा को देखकर औरतें दही के मटके को रखकर गा रही हैं–

"धीरे बहु नदिया तैं धीरे बहु,
मेरा पिया उतरइ दे पार।।'

इन औरतों के साथ नाव का मल्लाह भी उल्लासित होकर उमंग में सुर मिला कर गा रहा है–

'काहेन की तेरी नइया रे,
कहे की करूवारि।
कहाँ तोरा नइया खेवइया,
के धन उतरई पार।
धरमै कै मोरी नइया रे,
सत कइ लागी करूवारी।
सैंया मेरा नइया खेवइया रे, हम धन उतरब पार।

आगे इसी तरह 'हंसा जाई अकेला' कहानी में गाँव में चुनाव प्रचार का दौर चल रहा है, काँग्रेस की कार्यकर्ता सुशीला जी गीत गाकर प्रचार कर रही हैं। जब यह बात हंसा को पता चली है तो **''गवनई भी न होगी। 'अरे वहीं जागा हो बलमुआ गाँधी टोपी वाले...' हंसा ने खूँटी पर टँगी ढोलक उतारकर गले में लटका ली और एक ओर फटहे झंडे को लेकर लाठी में टाँग लिया। दो बार ढोलक पीटी। 'फिर जागा हो बलमुआ गन्हीं टोपी वाले आय गइलैं....टोपी वाले आय गइलैं....गाकर, ढोलक पर घड़म्–धड़ाम घुम–घुम...घड़म्–धड़ाम घुमघुम... मिनटों में ही पचासों लड़के आ जुटे। चल पड़ा हंसा का जुलूस।....इसी बीच कीर्तन प्रवचन हो गया। सुशीला जी ने भाषण भी दिया और सारी ग्राम–मंडली, (बिन विधा के भारत देश, दिन–दिन होती है तेरी ख्वारी रे।) गुनगुनाती वापस जाने लगी। हंसा खोया बैठा रहा। खंजड़ी की डिम्–डिम् और झाँझ की झंकार उसके कानों में गूँजती रही।...तभी दूर हंसा की भारी आवाज सुनाई दी?**

–जग वेल्हमैलू जुलूम कइलू ननदी...जग....।
बरम्हा के मोहलू, सिनू के माहलू।
सिवजी के नचिया नचौलू मोरी ननदी.....जग...।

सुशीला जी की मौत होने केबाद हंसा पागल होकर घुमता रहता है–**'हंसा जाई अकेला, ई देहिया न रही।'** इस गीर के द्वार हमें इस दुनिया की नश्वरता का पता चलता है, एवं जीवन की असलियत से गीत रूबरू कराते हैं।

'वासवी की माँ' कहानी में वासवी और सीता शाम को घूमने निकली। एक जगह उन्हें गाय–बछड़े का झुण्ड मिलता है। दो चरवाहे जिसमें एक लड़का और लड़की एक साथ गाना गा रहे हैं

''मैं तो राजा जल की मद्दरिया, तुम धीवर के लड़िका,
झमकि जाल डारत काहे नाहीं।

''सीता मुस्कराई, और मेरी तरफ घूम कर कहने लगी, जिन्दगी का यह भी एक स्वर है, जिसमें कितनी स्वाभाविकता और ईमानदारी है।

इसी तरह ग्रामीण परिवेश में अनेक तरह के मेला, रामलीला, तीज–त्योहार मनाते हैं। रक्षाबन्धन, ईद, मोहर्रम, दशहरा, होली, दीपावली नागपंचमी, गणेश चतुर्थी सब पूरी श्रद्धा से हर्ष एवं उल्लास के साथ मनाए जाते हैं। और ये सारे त्योहार हमारे सनातन धर्म का एक हिस्सा है। और मार्कण्डेय की कहानियों में भारत की संस्कृति की झलक देखने को बहुतायत में मिलती है, इनकी कहानी 'गुलरा के बाबा' में होली का दृश्य वड़ा मनमोहक लगता है **''फागुन के दूसरे पखवाड़े के थोड़े ही दिन बाकी थे–दिन को सुनहली धूप, शाम को अबीरी आकाश और रात को रूपहली, टहकी चाँदनी–खलिहान, जौ–गेंहूँ के डाँठ से खचाखच भरे हुए। हवा भी चिबोला करती है न! बकरिदिया ठाकुर के घर से नह काटकर लौट रही थी–फगुनहट का झोंका आया और आँचल उड़ाकर चला गया–''शरमा गयी बकरीदा! ठसमें क्या बात है जी, फागुन में बाबा देवर लागें!'' देवी पंडित ने आज खूब छान ली थी! 'भौजी ने मेरी सिलिक की कमीज रद्द कर दी।' नन्हकुआ मुस्कुराता जा**

रहा था और हाथ से कमीज सुखा रहा था। 'जीताबो आज खूग फँसी। बड़ी उस्ताद बनती थी न! आज पड़ गया सुधुआ से पाला, कलाई मरोड़ कर रंग का लोटा छीन लिया और खूब नहला कर गालों पर ऐसी रोली मली कि बच्ची का छठी का दूध याद आ गया।' बहुत बुरा किया राम! राम! कुनरू–ऐसे गाल जोर से मलने के लिये थोड़ी ही है।

इसी तरह कहीनी **'मुंशीजी'** में अपनी संस्कृति पर श्रद्धा का दृश्य देखने को मिलता है, **"तर–त्योहार पर बाप–दादों से लगी हुई परम्परा का निर्वाह होता ही रहता, रूपया चाहे जहाँ से आये।**

मार्कण्डेय एक प्रगतिवादी लेखक थे, उन्होंने अपनी कहानियों में मात्र भारत की संस्कृति का गौरव पक्ष ही नहीं वरन् उसके माध्यम से चेतना भी जागृत करते हैं। **'हंसा जाई अकेला'** में रामलीला का जो मंचन होता है उसमें राक्षस बनने को कोई तैयार नही होता है तब हंसा रावण का चोंगा पहनता है, क्योंकि वह यह किसी भी हालत में यह बर्दाश्त करने को तैयार नहीं है कि रामलीला बरबाद हो। **"मैं रावण हूँ, कहाँ है दुष्ट राम? एक बच्चे ने अपनी छड़ी में लगा हुआ तिरंगा झट दशानन के सिर पर खोंस दिया और सब लोग जोर से हँसने लगे। उसी भीड़ में से किसी ने चिल्ला कर कहा, 'गन्हीं महात्मा की जय...!' रावण भाषण देने लगा, 'भाइयों! राम राजा था।' देखो, छोटी जात का कोई भी राम नहीं बनने पाता है। राक्षस सब बनते हैं। बिराहिम, कालू, भुलई, फेद्दर, सभी की पालटी है, हमारी। यह जनता की लड़ाई है। बोल दो धावा। और हंसा हाथ–पाँव हिलाता आगे को चल पड़ा। पीछे–पीछे सारी राक्षसी सेना। किसानों के बन्दर बने लड़के भी अपना चेहरा लगा गदा के लिये, जनता की पार्टी में शामिल हो गये। राम बेचारे अकेले बैठे रह गया। रामायण बंद हो गई। तिवारी चिल्लाने लगा, पर कौन सुनता है। गन्हीं महात्मा की जय!.....हंसा दादा की जय....!**

इसी तरह हम अधिकतर गाँवों में यह देखते हैं कि कोई न कोई ऐसा व्यक्ति जरूर होता है जिसका उपहास सब उड़ाते हैं, वह चाहे जितनी गाली बके किसी पर उसका कोई फर्क नहीं पड़ता, और कोई भी उसकी बात का बुरा नहीं मानता । घूरा में भी यही देखने को मिलता है, **"गाँव के लड़के तालियाँ बजाते हैं, हँसते हैं.....'घूरा अमिरती चाभोगी, सिलिक पहनोगी.....? तमाखू पी लो, तमाखू।' और जिस रास्ते में वो चलती है, दो–चार कुत्ते भूँकने लगते हैं।....क्यों भूँकते हैं कुत्ते घूरा तेरे पीछे? इन्हें आदमी भुँकवाते हैं। लड़के, गाँव में हँसोड़ बच्चे, जो अपने माँ–बा पके प्यारे हैं.......बच्चे.....और बच्चे......घूरा सोचती है और उसकी निगाह कुछ साफ हो जाती है।**

भारत की ग्रामीण संस्कृति में बालकों के खेल का भी अपना एक अलग आनंद है, बालक गुड्डा–गुड्डी, छुपन–छुपाई, घर–घर, ओल्हापाती, कबड्डी, गुल्ली–डंडा आदि खेलों को बड़े ही आनंद के साथ खेलते हैं, मार्कण्डेय जहाँ ग्रामीण जीवन के यथार्थ की बखिया उघेड़ कर रख देते हैं वहीं बाल–मनोविज्ञान को परखने में भी बेजोड़ हैं, अपनी कुछ कहानियों में इन्होंने पाठकों को बाल–क्रीड़ा का आनंद दिया है।

कहानी **'घूल का घर'**, में कुक्कू, राम, मनी ने अपना एक खुद का घरौंदा बनाया है। **''कई दिनों की लगातार मेहनत से यह घर बनकर तैयार हुआ है, इसमें चाचा का घर है, यह दादा का घर है, गुड्डे–गुड़ई का घर है, कुक्कु का घर है, पर राम की कोठरी एकदम किनारे की ओर है। मनी कभी–कभी कहती है, 'तुम तो पहलेदाल हो न, घल के बाहल ही ठीक है। कोई चोल आएगा तो लड़ोगे!' मैं सब कुछ करूँगा मनी, पर माई के लिये भी एक घर दे दो इसमें। 'देखो यह मेरे मन की बात है, एक झोपली लग जाएगी, यहीं कहीं बाहल। उसी में लह जाएगी बाहल माई।' तभी कुक्कू उचक कर उनके बीच आया, 'कौन रहेगा झोपड़ी में मनी?' उसने हँसते हुए पूछा तो मनी ने हँसते हुए उत्तर दिया, 'लाम बइया की माई, बेचाले लो लहे हैं।' 'राम रो रहा है।' उसने सिर झुकाकर मुँह बनाते हुए राम की आँखों में देखा। सचमुच राम की आँखें भरी हुई थी, एकाएक बरस पड़ी, नींबू के पीले–पीले पत्तें पर घनघोर वर्षा के पहले गिरने वाली बड़ी–बड़ी बूँदों की तरह।**

इसी तरह हंसा जाई अकेला कहानी में भी ग्रामीण संस्कृति की झलक बाल–क्रीड़ा के द्वारा ही देखने को मिलती है। बच्चे उसकी ऐसे पीछा करते हैं जैसे कोई मदारी जा रहा हो **''हंसा दादा दुलहा बने हैं, दुलहा। और नन्हें–नन्हें चूहों की तरह उनके शरीर में रेंगने लगते हैं। कोई चुटइया उखाड़ता है, तो कोई कान में पूरी की पूरी अँगुली डाल देता है।**

जैसा कि सब जानते हैं कि गाँवों में बसने वाले लोग प्रकृति की गोद में ही पलते हैं, वो अपनी जन्मभूमि और अपने पशुओं से बहुत प्रेम करते हैं, उनकी नजर में खेत और फसल भगवान का दिया हुआ वरदान होता है, जिसके कारण वह अन्य सभी को कमतर ही मानते हैं। और इसी संबंध को मार्कण्डेय अपनी कहानियों में चित्रित किया है।

'गुलरा के बाबा' उनकी ऐसी कहानी है जिसमें मनुष्य और प्रकृति तथा जानवरों का गहरा प्रेम संबंध दिखता है। यहाँ इस कहानी के प्रमुख व्यक्ति का परिचय उसके बगीचे के नाम पर होता है , **'गुलरा के बाबा'**। गुलरा के बाबा का सारा दिन अपने पेड़–पौधों के बीच में ही व्यतीत होता है, एवं उनसे पुत्रवत् स्नेह करते हैं **''गुलरा की इस आमों का बगीचे का एक–एक जीव, एक–एक पत्ता बाबा के इस गर्जन से परिचित है। क्यों न हो, बाबा रात–दिन इन्हीं पेड़ों की सेवा–सत्कार में लगे रहते हैं......वे गुलरा के बाबा कहे जाते हैं....।** इन पंक्तियों के माध्यम से यह महसूस किया जाता है कि ग्रामीण परिवेश में निवास करने वाले लोगों का प्रकृति से कितना गहरा संबंध होता है।

आगे एक दूसरी कहानी **'महुए का पेड़'** है जिसमें कहानी का शीर्षक ही एक पेड़ पर आधारित है। यहाँ दुखना का सारा जीवन महुए के पेड़ के इर्द–गिर्द ही घूमता है, कि वह एक क्षण के लिये भी अलग होने के लिये तैयार नहीं है। वह दोनों एक दूसरे के पूरक रहते हैं, वह जिस तरह अपने आप को सब तकलीफों से बचाने का प्रयास करती है, उसी तरह महुए के पेड़ को भी सुरक्षित करने का प्रयत्न करती है। महुए का पेड़ उसका सामाजिक एवं आर्थिक रूप से उसको एक सुरक्षा कवच प्रदान करता है– **''महुए के पेड़ से उसका बड़ा निकट संबंध है। उसे दुखना ने अपने हाथ से लगाया है, सींचा है और देख–रेख कर इतना बड़ा किया**

है। अब उसकी उम्र पचास वर्ष की हो रही है। दुखना कभी उसे अपना बच्चा समझती थी, पर अब उसके विशाल पौरूष की छाया के नीचे अपने को रक्षित समझती है। क्या मजाल है कि कोई टहनी भी उससे तोड़ ले। चाहे वह जमींदार का ऊँट हो, चाहे मौला का हाथी दुखना के जीते जी उस महुए की छाया दोनों के लिये वर्जित है।

दुखना के लिये 'महुए का पेड़' उसके जीने का साधन है, इसी लिये उसे लगता है कि महुए का पेड़ से ही उसका अस्तित्व ही खत्म हो गया है, उसे अपना जीवन व्यर्थ लगता है, उसकी जीने की इच्छा ही खत्म हो जाती है– **''वह महुए के तने के पास चली गई, खून–सी लाल तने की लकड़ी को हाथ से हुआ, झोपड़ी की दीवारों को देखा और घूम कर हरखू की माई कहने लगी–हरखू की माँ चलती हो तीरथ को मैं तो चली।** इन सब बातों से यह अंदाजा लगा सकते हैं कि उसे प्रकृति से कितना प्रेम है।

इसी तरह **'सवरइया'** कहानी में गाँव वालों का अपने पशुओं से भी गहरा नाता है। इस कहानी में महराजिन का अपने बैल सवरइया से बहुत भावनात्मक रिश्ता है, वह उनके घर का एक सदस्य ही है, **''महराजिन धीरे–धीरे बढ़ी उसकी गर्दन और डील पर हाथ फेरने लगी। सवरइया ने गर्दन झुका ली और महराजिन का पैर चाटने लगा। गोसैयाँ के ममता भरे हाथों ने उसका पशुत्व छीन लिया।** महराजिन ने अपनी संकट की घडी में भी वह उसे अपने से दूर नहीं करना चाहती है– **''काकी काहे नाहक परेशान हो रही हो। अरे सवरइया हमें दे दो हम दो सौ रूपया दे देंगे। मालगुजारी भी दे दी जाएगी, और भी काम चलेगा....और वे आँगन में इधर–उधर घूमने लगीं। फिर सोचने लगीं, 'शीशफूल रख दूँ, क्या करूँगी? लेकिन वही तो उनकी निशानी है, तो क्या सवरइया, सवरइया...?' नहीं–नहीं, इसे नहीं बेच सकती।** इन सबसे हम ग्रामीणों का पशु–प्रेम देख सकते हैं।

शोध निष्कर्ष :–

मार्कण्डेय की कहानियाँ सामाजिक सम्बन्धों एवं ग्रामीण जीवन के परिवेश के बनते–बिगड़ते रिश्तों को प्रस्तुत करती हैं। उनकी कहानियाँ सामाजिक जीवन में पसरी अमानवीयता, शोषण एवं उत्पीड़न को अभिव्यक्त करती हुई प्रतीत होती थीं। उनकी कहानियाँ 'सोहगइला', 'मन के मोड़', 'नीम की टहनी', 'दाना–भूसा' जहाँ ग्रामीण जीवन में व्याप्त अंधविश्वास, रूढ़िवादी मान्यताएँ, दकियानूसी, शकुन–अपशकुन एवं परंपरावादी मान्यताओं को वर्णित करती है।

डॉ0 लक्ष्मण दत्त गौतम कहते थे, **''उन्होंने जन–जीवन में रचे–बसे अंधविश्वासों को देखा है और उन्हें ध्वस्त होते हुए देखने का स्वप्न भी देखा है। यही नहीं सम्पूर्ण संकल्प के साथ उसने उन रूढ़ियों पर प्रहार करने का कोई अवसर नहीं जाने दिया है।''**

मार्कण्डेय ने अपने साहित्य में लोक–संस्कृति का बहुत सुन्दर एवं सहज चित्रण किया है। ग्रामीण परिवेश के समारोहों, रीति–रिवाजों, त्योहारों, लोक–परंपराओं लोकाचार, लोक–गीत, शादी–ब्याह, मेले, रामलीला आदि सब का बहुत मनोहारी एवं हृद्यस्पर्शी चित्रण किया है। ग्रामीण परिवेश की जनता किस प्रकार

भूत–प्रेत, टोना, जादु, होम, अगियार, एवं चमत्कारों पर आज भी भरोसा करती है का चित्रण किया है। किसी के बीमार हो जाने पर नीम की पत्तियों से उसका ठीक हो जाना, तथा बनसत्ती मैया को चुनरी चढ़ाना एवं उसकी मान्यताओं का वर्णन किया है। उन्होंने अपने साहित्य में फाग, दंगल–कुश्ती, रक्षाबन्धन, शादी की अनेकों मान्यताओं एवं प्रथाओं का ग्रामीण रीति–रिवाजों के अनुसार पूरा विश्लेषण किया है।

******

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]. मार्कण्डेय से साक्षात्कार, दि. 26/11/2006
[2]. डॉ. सुरेंद्र प्रसाद, मार्कण्डेय का रचना संसार, पृ. 13
[3]. कुछ यादें कुछ बातें, मार्कण्डेय : एक प्रतिबद्ध स्वप्नदर्शी, पृ. 77
[4]. मार्कण्डेय होने का अर्थ, कल के लिए, अक्टूबर–दिसंबर 1996 पृ. 13
[5]. मार्कण्डेय, मार्कण्डेय की कहानियाँ, माही, भूमिका, पृ. 323
[6]. प्रतिमान, नवंबर 1978 (राजेन्द्र कुमार मेहरोत्रा की मार्कण्डेय से एक बातचीत), उद्धृत नई कहानी के कहानीकारों की आलोचनात्मक दृष्टि, पृ. 193–194
[7]. 'हिन्दी उपन्यासों में ग्राम समस्याएँ', डॉ0 ज्ञान अस्थाना, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा–2, 1979, पृष्ठ 26
[8]. 'सिद्धान्त कौमुदी', पाणिनी, सम्पादक आचार्य रघुनाथ शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, 2010, पृष्ठ 38
[9]. 'भारतीय ग्राम', श्यामाचरण दुबे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृष्ठ 9
[10]. 'ग्रामीण समाजशास्त्रः साहित्य के परिप्रेक्ष्य में', उद्धृत, विश्वम्भरदयाल गुप्त, सीता प्रकाशन, कानपुर, 1980, पृष्ठ 27
[11]. 'भारतेंदु हरिश्चंद्र के साहित्य में भाव बोध स्थापनाएं और प्रतिस्थापनाएं', डा. वीरेन्द्र अग्रवाल, 1996, पृष्ठ
[12]. 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में ग्राम्य जीवन और संस्कृति', डॉ0 राजेन्द्र कुमार, परिमल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1988, पृष्ठ 64
[13]. 'सवरइया', 'मार्कण्डेय की कहानियाँ', मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 24
[14]. 'एक दिन की डायरी', 'मार्कण्डेय की कहानियाँ', मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 1
[15]. 'गुलरा के बाबा', 'मार्कण्डेय की कहानियाँ', मार्कण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002 पृष्ठ 26
[16]. 'सेमल का फूल', मार्कण्डेय, पृष्ठ 44